ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

# श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

लेखक—
श्रीजयदयाल गोयन्दका

मूल्य -)

मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास
गीताप्रेस, गोरखपुर

६ वार १०००० सं० १९८४
७ वार १०००० सं० १९८६

मिलनेका पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

# अथ श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश

परमात्माकी शरणमें प्राप्त हुए पुरुषका मन परमात्मासे प्रार्थना करता है:---

हे प्रभो! हे विश्वम्भर! हे दीनदयालो! हे कृपासिन्धो! हे अन्तर्यामिन्! हे पतितपावन! हे सर्वशक्तिमान्! हे दीनबन्धो! हे नारायण! हे हरे! दया करिये, दया करिये। हे अन्तर्यामिन्! आपका नाम संसारमें दयासिन्धु और सर्वशक्तिमान् विख्यात है, इसलिये दया करना आपका काम है।

हे प्रभो! यदि आपका नाम पतितपावन है तो एक बार आकर दर्शन दीजिये। मैं आपको बारम्बार प्रणाम करके विनय करता हूं, हे प्रभो! दर्शन देकर कृतार्थ करिये। हे प्रभो! आपके विना इस संसारमें मेरा और कोई भी नहीं है, एक बार दर्शन दीजिये, दर्शन दीजिये, विशेष न तरसाइये। आपका नाम विश्वम्भर है, फिर मेरी आशाको क्यों नहीं पूर्ण करते हैं। हे करुणामय! हे दयासागर! दया करिये। आप दयाके समुद्र हैं, इसलिये किंचित् दया करनेसे आप दयासागरमें कुछ दयाकी त्रुटि नहीं हो जायगी। आपकी किंचित् दयासे संपूर्ण संसारका उद्धार हो सकता है, फिर एक तुच्छ जीवका उद्धार

करना आपके लिये कौन बड़ी बात है। हे प्रभो ! यदि आप मेरे कर्तव्यको देखें तब तो इस संसारसे मेरा निस्तार होनेका कोई उपाय ही नहीं है। इसलिये आप अपने पतितपावन नामकी ओर देखकर इस तुच्छ जीवको दर्शन दीजिये। मैं न तो कुछ भक्ति जानता हूं, न योग जानता हूं तथा न कोई क्रिया ही जानता हूं, जोकि मेरे कर्तव्यसे आपका दर्शन हो सके। आप अन्तर्यामी होकर यदि दयासिन्धु नहीं होते तो आपको संसारमें कोई दयासिन्धु नहीं कहता, यदि आप दयासागर होकर भी अन्तरकी पीड़ाको न पहचानते तो आपको कोई अन्तर्यामी नहीं कहता। दोनों गुणोंसे युक्त होकर भी यदि आप सामर्थ्यवान् न होते तो आपको कोई सर्वशक्तिमान् और सर्वसामर्थ्यवान् नहीं कहता। यदि आप केवल भक्तवत्सल ही होते तो आपको कोई पतितपावन नहीं कहता। हे प्रभो ! हे दयासिन्धो ! एक बार दया करके दर्शन दीजिये ॥ १ ॥

जीवात्मा अपने मनसे कहता है :—

रे दुष्ट मन ! कपटभरी प्रार्थना करनेसे क्या अन्तर्यामी भगवान् प्रसन्न हो सकते हैं ? क्या वे नहीं जानते कि ये सब तेरी प्रार्थनायें निष्काम नहीं हैं ? एवं तेरे हृदयमें श्रद्धा, विश्वास और प्रेम कुछ भी नहीं है ? यदि तेरेको यह विश्वास है कि भगवान् अन्तर्यामी हैं तो फिर किसलिये प्रार्थना करता है ? बिना प्रेमके मिथ्या प्रार्थना करनेसे भगवान् कभी नहीं सुनते, और यदि प्रेम है तो फिर कहनेसे प्रयोजन ही क्या है ? क्योंकि भगवान्‌ने तो स्वयं ही श्रीगीताजीमें कहा है कि:—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥

( गी० अ० ४ श्लो० ११ )

जो मेरेको जैसे भजते हैं मैं भी उनको वैसे ही भजता हूं। तथा—

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥

( गी० अ० ९ श्लो० २९ )

जो ( भक्त ) मेरेको भक्तिसे भजते हैं वे मेरेमें हैं और मैं भी उनमें ( प्रत्यक्ष प्रकट ) हूं*।

रे मन ! हरि दयासिन्धु होकर भी यदि दया न करें तो भी कुछ चिन्ता नहीं, अपनेको तो अपना कर्तव्यकार्य करते ही रहना चाहिये। हरि प्रेमी हैं, वे प्रेमको पहचानते हैं, प्रेमके विषयको प्रेमी ही जानता है, वे अन्तर्यामी भगवान् क्या तेरे शुष्क प्रेमसे दर्शन दे सकते हैं ? जब विशुद्ध प्रेम और श्रद्धा विश्वासरूपी डोरी तैयार हो जायगी तो उस डोरी-द्वारा बँधे हुए हरि आप ही आप चले आवेंगे। रे मूर्ख मन ! क्या मिथ्या प्रार्थनासे काम चल सकता है ? क्योंकि हरि अन्तर्यामी हैं। रे मन ! तेरेको नमस्कार है, तेरा काम संसारमें चक्कर लगानेका है सो जहां तेरी इच्छा हो वहां जा। तेरे ही

* जैसे सूक्ष्मरूपसे सब जगह व्याप्त हुआ भी अग्नि साधनों-द्वारा प्रकट करनेसे ही प्रत्यक्ष होता है वैसे ही सब जगह स्थित हुआ भी परमेश्वर भक्तिसे भजनेवालेके ही अन्तःकरणमें प्रत्यक्षरूपसे प्रकट होता है।

सङ्गके कारण मैं इस असार संसारमें अनेक दिन फिरता रहा, अब हरिके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करनेसे तेरा संपूर्ण कपट जाना गया। तूं मेरे लिये कपटभाव और अति दीन वचनोंसे भगवान्से प्रार्थना करता है परन्तु तूं नहीं जानता कि हरि अन्तर्यामी हैं। श्रीयोगवाशिष्ठमें ठीक ही लिखा है कि मनके अमन हुए विना अर्थात् मनका नाश हुए विना भगवान्की प्राप्ति नहीं होती। वासनाका क्षय, मनका नाश और परमेश्वरकी प्राप्ति यह तीनों एक ही कालमें होते हैं। इसलिये तेरेसे विनय करता हूं कि तूं यहांसे अपने साजने-सहित चला जा, अब यह पक्षी तेरी मायारूपी फाँसीमें नहीं फँस सकता, क्योंकि इसने हरिके चरणोंका आश्रय लिया है। क्या तूं अपनी दुर्दशा कराके ही जायगा? अहो! कहां वह माया? कहां काम क्रोधादि शत्रुगण? अब तो तेरी संपूर्ण सेनाका क्षय होता जाता है, इसलिये अपना प्रभाव पड़नेकी आशाको त्यागकर जहां इच्छा हो चला जा॥ २॥

मन फिर परमात्मासे प्रार्थना करता है:—

प्रभो! प्रभो! दया करिये, हे नाथ! मैं आपकी शरण हूं। हे शरणागत प्रतिपालक! शरण आयेकी लज्जा रखिये। हे प्रभो! रक्षा करिये, रक्षा करिये, एक बार आकर दर्शन दीजिये। आपके बिना इस संसारमें मेरे लिये कोई भी आधार नहीं है, अतएव आपको बारम्बार नमस्कार करता हूं, प्रणाम करता

हूं, विलम्ब न करिये, शीघ्र आकर दर्शन दीजिये। हे प्रभो! हे दयासिन्धो! एक बार आकर दासकी सुध लीजिये।

आपके न आनेसे प्राणोंका आधार कोई भी नहीं दीखता। हे प्रभो! दया करिये, दया करिये, मैं आपकी शरण हूं, एक बार मेरी ओर दयादृष्टिसे देखिये। हे प्रभो! हे दीनबन्धो! हे दीनदयालो! विशेष न तरसाइये, दया करिये। मेरी दुष्टताकी ओर न देखकर अपने पतितपावन स्वभावका प्रकाश करिये ॥३॥

जीवात्मा अपने मनसे फिर कहता है:—

रे मन! सावधान! सावधान! किसलिये व्यर्थ प्रलाप करता है। वे श्रीसच्चिदानन्दघन हरि झूठी विनती नहीं चाहते। अब तेरा कपट यहां नहीं चलेगा, तूं मेरे लिये क्यों हरिसे कपटभरी प्रार्थना करता है? ऐसी प्रार्थना मैं नहीं चाहता, तेरी जहां इच्छा हो वहां चला जा।

यदि हरि अन्तर्यामी हैं तो प्रार्थना करनेकी क्या आवश्यकता है। यदि वे प्रेमी हैं तो बुलानेकी क्या आवश्यकता है? यदि वे विश्वम्भर हैं तो मांगनेकी क्या आवश्यकता है। तेरेको नमस्कार है, तूं यहांसे चला जा, चला जा ॥४॥

जीवात्मा अपनी बुद्धि और इन्द्रियोंसे कहता है:-

हे इन्द्रियो! तुमको नमस्कार है, तुम भी जाओ, जहां वासना होती है वहां तुम्हारा टिकाव होता है। मैंने हरिके चरणकमलोंका आश्रय लिया है, इसलिये अब तुम्हारा दाव

नहीं पड़ेगा । हे बुद्धे ! तेरेको भी नमस्कार है, पहले तेरा ज्ञान कहां गया था जब कि तूं मेरेको संसारमें डूबनेके लिये शिक्षा दिया करती थी ? क्या वह शिक्षा अब लग सकती है ? ॥ ५ ॥

जीवात्मा परमात्मासे कहता है:—

हे प्रभो ! आप अन्तर्यामी हैं, इसलिये मैं नहीं कहता कि आप आकर दर्शन दीजिये, क्योंकि यदि मेरा पूर्ण प्रेम होता तो क्या आप ठहर सकते ? क्या वैकुण्ठमें लक्ष्मी भी आपको अटका सकती ? यदि मेरी आपमें पूर्ण श्रद्धा होती तो क्या आप विलम्ब करते ? क्या वह प्रेम और विश्वास आपको छोड़ सकता ? अहो ! मैं व्यर्थ ही संसारमें निष्कामी और निर्वासनिक बना हुआ हूं और व्यर्थ ही अपनेको आपके शरणागत मानता हूं । परन्तु कोई चिन्ता नहीं, जो कुछ आकर प्राप्त हो उसीमें मुझे प्रसन्न रहना चाहिये । क्योंकि ऐसे ही आपने श्रीगीताजीमें कहा है* । इसलिये आपके चरणकमलोंकी प्रेम-भक्तिमें मग्न रहते हुए यदि मेरेको नरक भी प्राप्त हो तो वह भी स्वर्गसे बढ़कर है । ऐसी दशामें मेरेको क्या चिन्ता है ? जब मेरा आपमें प्रेम होगा तो क्या आपका नहीं होगा ? जब मैं

---

* यदृच्छालाभसंतुष्टः ( गीता अध्याय ४ श्लोक २२ ) संतुष्टो येन केनचित् ( गीता अध्याय १२ श्लोक १९ )

आपके दर्शन बिना नहीं ठहर सकूंगा उस समय क्या आप ठहर सकेंगे ? आपने तो स्वयं श्रीगीताजीमें कहा है कि:-

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

जो मेरेको जैसे भजते हैं मैं भी उनको वैसे ही भजता हूं । अतएव मैं नहीं कहता कि आप आकर दर्शन दीजिये। और आपको भी क्या परवाह है, परन्तु कोई चिन्ता नहीं, आप जैसा उचित समझें वैसा ही करें, आप जो कुछ करें उसीमें मेरेको आनन्द मानना चाहिये ॥ ६ ॥

जीवात्मा ज्ञाननेत्रोंद्वारा परमेश्वरका ध्यान करता हुआ आनन्दमें विह्वल होकर कहता है :-

अहो ! अहो ! आनन्द ! आनन्द ! प्रभो ! प्रभो ! क्या आप पधारे? धन्य भाग्य! धन्य भाग्य! आज मैं पतित भी आपके चरणकमलोंके प्रभावसे कृतार्थ हुआ। क्यों न हो, आपने स्वयं श्रीगीताजीमें कहा है कि:-

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

( गीता अ० ९ श्लो० ३०-३१ )

यदि (कोई) अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त

हुआ मेरेको (निरन्तर) भजता है, वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है।

इसलिये वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परमशान्तिको प्राप्त होता है, हे अर्जुन! तूं निश्चय-पूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता॥ ७॥

जीवात्मा परमात्माके आश्चर्यमय सगुणरूपको ध्यानमें देखता हुआ अपने मन ही मनमें उनकी शोभा वर्णन करता है।

अहो! कैसे सुन्दर भगवान्‌के चरणारविन्द हैं कि जो नीलमणिके ढेरकी भांति चमकते हुए अनन्त सूर्योंके सदृश प्रकाशित हो रहे हैं। चमकीले नखोंसे युक्त कोमल कोमल अंगुलियां जिनपर रत्नजड़ित सुवर्णके नूपुर शोभायमान हैं। जैसे भगवान्‌के चरणकमल हैं वैसे ही गोडे और जङ्घादि अङ्ग भी नीलमणिके ढेरकी भांति पीताम्बरके भीतरसे चमक रहे हैं। अहो! सुन्दर चार भुजायें कैसी शोभायमान हैं। ऊपरकी दोनों भुजाओंमें तो शंख और चक्र एवं नीचेकी दोनों भुजाओंमें गदा और पद्म विराजमान हैं। चारों भुजाओंमें केयूर और कड़े आदि सुन्दर सुन्दर आभूषण सुशोभित हैं। अहो! भगवान्‌का वक्षःस्थल कैसा सुन्दर है कि जिसके मध्यमें श्रीलक्ष्मीजीका और भृगुलताका चिह्न विराज-मान है तथा नीलकमलके सदृश वर्णवाली भगवान्‌की ग्रीवा भी कैसी सुन्दर है जिसमें रत्नजड़ित हार और कौस्तुभमणि

विराजमान है एवं मोतियोंकी और वैजयन्ती तथा सुवर्णकी और भांति भांतिके पुष्पोंकी मालाएं सुशोभित हैं। सुन्दर ठोड़ी, लाल ओष्ठ और भगवान्‌की अतिशय सुन्दर नासिका है जिसके अग्रभागमें मोती विराजमान है। भगवान्‌के दोनों नेत्र कमलपत्रके समान विशाल और नीलकमलके पुष्पकी भांति खिले हुए हैं। कानोंमें रत्नजड़ित सुन्दर मकराकृत कुण्डल और ललाटपर श्रीधारी तिलक एवं शीशपर रत्नजड़ित किरीट (मुकुट) शोभायमान है। अहो! भगवान्‌का मुखारविन्द पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भांति गोल गोल कैसा मनोहर है जिसके चारों ओर सूर्यके सदृश किरणें देदीप्यमान हैं। जिनके प्रकाशसे मुकुटादि संपूर्ण भूषणोंके रत्न चमक रहे हैं? अहो! आज मैं धन्य हूं, धन्य हूं कि जो मन्द मन्द हँसते हुए आनन्दमूर्ति हरि भगवान्‌का दर्शन कर रहा हूं॥ ८॥

इस प्रकार आनन्दमें विह्वल हुआ जीवात्मा ध्यानमें अपने सन्मुख सवा हाथकी दूरीपर बारह वर्षकी सुकुमार अवस्थाके रूपमें भूमिसे सवा हाथ ऊंचे आकाशमें विराजमान परमेश्वरको देखता हुआ उनकी मानसिक पूजा करता है।

# मानसिक पूजाकी विधि ।

ॐ पादयोः पाद्यं समर्पयामि नारायणाय नमः ॥१॥

इस मन्त्रको बोलकर शुद्ध जलसे श्रीभगवान्‌के चरणकमलों-को धोकर उस जलको अपने मस्तकपर धारण करना ॥१॥

ॐ हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि नारायणाय नमः ॥२॥

इस मन्त्रको बोलकर श्रीहरि भगवान्‌के हस्त-कमलोंपर पवित्र जल छोड़ना ॥२॥

ॐ आचमनीयं समर्पयामि नारायणाय नमः ॥३॥

इस मन्त्रको बोलकर श्रीनारायणदेवको आचमन कराना ॥३॥

ॐ गन्धं समर्पयामि नारायणाय नमः ॥४॥

इस मन्त्रको बोलकर श्रीहरिके ललाटपर रोली लगाना ॥४॥

ॐ मुक्ताफलं समर्पयामि नारायणाय नमः ॥५॥

इस मन्त्रको बोलकर श्रीभगवान्‌के ललाटपर मोती लगाना।

ॐ पुष्पं समर्पयामि नारायणाय नमः ॥६॥

इस मन्त्रको बोलकर श्रीभगवान्‌के मस्तकपर और नासिका-के सामने आकाशमें पुष्प छोड़ना ॥६॥

ॐ मालां समर्पयामि नारायणाय नमः ॥७॥

इस मन्त्रको बोलकर पुष्पोंकी माला श्रीहरिके गलेमें पहराना

ॐ धूपमाघ्रापयामि नारायणाय नमः ॥८॥

इस मन्त्रको बोलकर श्रीभगवान्‌के सामने अग्निमें धूप छोड़ना

ॐ दीपं दर्शयामि नारायणाय नमः ॥ ९ ॥

इस मन्त्रको बोलकर घृतका दीपक जलाकर श्रीविष्णु भगवान्के सामने रखना ॥ ९ ॥

ॐ नैवेद्यं समर्पयामि नारायणाय नमः ॥ १० ॥

इस मन्त्रको बोलकर मिश्रीसे श्रीहरि भगवान्के भोग लगाना ॥ १० ॥

ॐ आचमनीयं समर्पयामि नारायणाय नमः ॥ ११ ॥

इस मन्त्रको बोलकर श्रीभगवान्को आचमन कराना ॥११॥

ॐ ऋतुफलं समर्पयामि नारायणाय नमः ॥ १२ ॥

इस मन्त्रको बोलकर ऋतुफल ( केला आदि ) से श्रीभगवान्के भोग लगाना ॥१२॥

ॐ पुनराचमनीयं समर्पयामि नारायणाय नमः ॥ १३ ॥

इस मन्त्रको बोलकर श्रीभगवान्को फिर आचमन कराना ॥

ॐ पूगीफलं सताम्बूलं समर्पयामि नारायणाय नमः ॥१४॥

इस मन्त्रको बोलकर सुपारीसहित नागरपान श्रीभगवान्के अर्पण करना ॥१४॥

ॐ पुनराचमनीयं समर्पयामि नारायणाय नमः ॥ १५ ॥

इस मन्त्रको बोलकर पुनः श्रीहरिको आचमन कराना फिर सुवर्णके थालमें कपूरको प्रदीप्त करके श्रीनारायणदेवकी आरती उतारना ।

ॐ पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि नारायणाय नमः ॥ १६ ॥

इस मन्त्रको बोलकर सुन्दर सुन्दर पुष्पोंकी अञ्जलि भरकर श्रीहरि भगवान्‌के मस्तकपर छोड़ना ॥ १६ ॥

फिर चार प्रदक्षिणा करके श्रीनारायणदेवको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करना

उक्त प्रकारसे श्रीहरि भगवान्‌की मानसिक पूजा करनेके पश्चात् उनको अपने हृदय-आकाशमें शयन कराके जीवात्मा अपने मन ही मनमें श्रीभगवान्‌के स्वरूप और गुणोंका वर्णन करता हुआ बारम्बार सिरसे प्रणाम करता है :—

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

जिनकी आकृति अतिशय शान्त है, जो शेषनागकी शय्यापर शयन किये हुए हैं, जिनकी नाभिमें कमल है, जो देवताओंके भी ईश्वर और संपूर्ण जगत्‌के आधार हैं, जो आकाशके सदृश सर्वत्र व्याप्त हैं, नीलमेघके समान जिनका वर्ण है, अतिशय सुन्दर जिनके संपूर्ण अङ्ग हैं, जो योगियोंद्वारा ध्यान करके प्राप्त किये जाते हैं, जो संपूर्ण लोकोंके स्वामी हैं, जो जन्म-मरणरूप भयका नाश करनेवाले हैं, ऐसे श्रीलक्ष्मीपति कमलनेत्र विष्णु भगवान्‌को मैं सिरसे प्रणाम करता हूं।

असंख्य सूर्योंके समान जिनका प्रकाश है, अनन्त चन्द्रमाओंके समान जिनकी शीतलता है, करोड़ों अग्नियोंके समान जिनका तेज है, असंख्य मरुद्गणोंके समान जिनका पराक्रम है, अनन्त इन्द्रोंके समान जिनका ऐश्वर्य है, करोड़ों

## * श्रीशेषशायी *

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्॥

कामदेवोंके समान जिनकी सुन्दरता है, असंख्य पृथिवियोंके समान जिनमें क्षमा है, करोड़ों समुद्रोंके समान जो गम्भीर हैं, जिनकी किसी प्रकार भी कोई उपमा नहीं कर सकता, वेद और शास्त्रोंने भी जिनके स्वरूपकी केवलमात्र कल्पना ही की है, पार किसीने भी नहीं पाया, ऐसे अनुपमेय श्रीहरि भगवान्‌को मेरा बारम्बार नमस्कार है।

जो सच्चिदानन्दमय श्रीविष्णु भगवान् मन्द मन्द मुस्कुरा रहे हैं, जिनके सारे अङ्गोंपर रोम रोममें पसीनेकी बूंदें चमकती हुई शोभा देती हैं, ऐसे पतितपावन श्रीहरि भगवान्‌को मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥१०॥

जोवात्मा मन ही मनमें श्रीहरि भगवान्‌को पंखेसे हवा करता हुआ एवं उनके चरणोंकी सेवा करता हुआ उनकी स्तुति करता है–

अहो ! हे प्रभो ! आप ही ब्रह्मा हैं, आप ही विष्णु हैं, आप ही महेश हैं, आप ही सूर्य हैं, आप ही चन्द्रमा और तारागण हैं, आप ही भूर्भुवः स्वः तीनों लोक हैं, तथा सातों द्वीप और चौदह भुवन आदि जो कुछ भी है, सब आपहीका स्वरूप है, आप ही विराट्स्वरूप हैं, आप ही हिरण्यगर्भ हैं, आप ही चतुर्भुज हैं, और मायातीत शुद्ध ब्रह्म भी आप ही हैं, आपहीने अपने अनेक रूप धारण किये हैं, इसलिये संपूर्ण संसार आपहीका स्वरूप है, तथा द्रष्टा, दृश्य, दर्शन जो कुछ भी है, सो सब आप ही हैं*। अतएव–

---

* "एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः" (विष्णुसहस्रनाम०)
अर्थ–पृथक् पृथक् संपूर्ण भूतोंको उत्पन्न करनेवाला महान्

नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते ।
अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥

अर्थ–संपूर्ण प्राणियोंके आदिभूत पृथ्वीको धारण करनेवाले और युग युगमें प्रगट होनेवाले अनन्तरूपधारी ( आप ) विष्णु भगवान्‌के लिये नमस्कार है।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

अर्थ–आप ही माता और आप ही पिता हैं, आप ही बन्धु और आप ही मित्र हैं, आप ही विद्या और आप ही धन हैं, हे देवोंके देव ! आप ही मेरे सर्वस्व हैं ॥ ११ ॥

उक्त प्रकारसे परमात्माकी प्रेमभक्तिमें लगे हुए पुरुषका जब परमात्मामें अतिशय प्रेम हो जाता है उस कालमें उसको अपने शरीरादिकी भी सुध नहीं रहती, जैसे सुन्दरदासजीने प्रेमभक्तिका लक्षण करते हुए कहा है–

इन्दव छन्द ।

प्रेम लग्यो परमेश्वरसों, तब भूलि गयो सिगरो घरबारा ।
ज्यों उन्मत्त फिरै जित ही तित, नेक रही न शरीर संभारा ॥

---

भूत एक ही विष्णु अनेक रूपसे स्थित है। तथा "एकोऽहं बहुस्याम" (इति श्रुतिः) अर्थ—(सृष्टिके आदिमें भगवान्‌ने सङ्कल्प किया कि) मैं एक ही बहुत रूपोंमें होऊं।

श्वास उसास उठे सब रोम, चलै दृग नीर अखण्डित धारा।
सुन्दर कौन करै नवधा विधि, छाकि परयौ रस पी मतवारा॥

नाराच छन्द।

न लाज तीन लोककी, न वेदको कह्यो करे।
न शङ्क भूत प्रेतकी, न देव यक्षतें डरे॥
सुने न कान औरकी, द्रसै न और इच्छना।
कहै न मुख और बात, भक्ति प्रेम-लच्छना॥

बीजुमाला छन्द।

प्रेम अधीनो छाक्यो डोलै, क्योंकि क्योंही बाणी बोलै।
जैसे गोपी भूली देहा, तैसो चाहे जासों नेहा॥

मनहर छन्द।

नीर बिनु मीन दुःखी, क्षीर बिनु शिशु जैसे,
पीरकी ओषधि बिनु, कैसे रह्यो जात है।
चातक ज्यों स्वातिबूंद, चन्दको चकोर जैसे,
चन्दनकी चाह करि, सर्प अकुलात है॥
निर्धन ज्यों धन चाहे, कामिनीको कन्त चाहे,
ऐसी जाके चाह ताहि, कछु न सुहात है।
प्रेमको प्रवाह ऐसो, प्रेम तहां नेम कैसो,
सुन्दर कहत यह, प्रेमहीकी बात है॥

छप्पय छन्द।

कबहुंक हंसि उठि नृत्य करै, रोवन फिर लागे।
कबहुंक गद्गदकण्ठ, शब्द निकसे नहिं आगे॥
कबहुंक हृदय उमङ्ग, बहुत ऊंचे स्वर गावे।
कबहुंक ह्वै मुख मौन, गगन ऐसे रहि जावे॥

चित्त वित्त हरिसों लग्यो, सावधान कैसे रहै।
यह प्रेमलक्षणा भक्ति है, शिष्य सुनहु सुन्दर कहै॥

सगुण भगवान्के अन्तर्द्धान हो जानेपर जीवात्मा शुद्ध सच्चिदानन्दघन सर्वव्यापी परब्रह्म परमात्माके स्वरूपमें मग्न हुआ कहता है:–

अहो! आनन्द! आनन्द! अति आनन्द! सर्वत्र एक वासुदेव ही वासुदेव व्याप्त है * अहो! सर्वत्र एक आनन्द ही आनन्द परिपूर्ण है।

कहां काम, कहां क्रोध, कहां लोभ, कहां मोह, कहां मद, कहां मत्सरता, कहां मान, कहां क्षोभ, कहां माया, कहां मन, कहां बुद्धि, कहां इन्द्रियां, सर्वत्र एक सच्चिदानन्द ही सच्चिदानन्द व्याप्त है। अहो! अहो! सर्वत्र एक सत्यरूप, चेतनरूप, आनन्दरूप, घनरूप, पूर्णरूप, ज्ञानस्वरूप, कूटस्थ, अक्षर, अव्यक्त, अचिन्त्य, सनातन, परब्रह्म, परमअक्षर, परिपूर्ण, अनिर्देश्य, नित्य, सर्वगत, अचल, ध्रुव, अगोचर, मायातीत, अग्राह्य, आनन्द, परमानन्द, महानन्द, आनन्द ही आनन्द, आनन्द ही आनन्द परिपूर्ण है, आनन्दसे भिन्न कुछ भी नहीं है॥१३॥

इति शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

---

* बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ (गी० अ० ७ श्लो० १९)

अर्थ–(जो) बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त हुआ ज्ञानी सब कुछ वासुदेव ही है, इसप्रकार मेरेको भजता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है।

आनन्दकी बहार है
आनन्दकी बहार है।
सब लहरें उठतीं आनन्दकी
आनन्दकी बहार है॥